Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

भूमि संसाधनों का उपयोगः सम–सीमांत उपयोगिता सिद्धांत

प्रेम वर्मा
शोधार्थी, इतिहास विभाग, राजीव गांधी विश्वविद्यालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश, भारत

शोध सारः–
भूमि संसाधन को किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी माना जाता है। मानव सभ्यता के आरंभ से ही भूमि को अत्यधिक महत्व प्राप्त रहा है — इसे जीवन की आत्मा तक कहा गया है। प्राचीन काल में राजा की शक्ति उसकी अधीन भूमि की परिमाण से आँकी जाती थी। यद्यपि आधुनिक समय में भूमि संसाधनों के उपयोग में विविधता और परिवर्तन आ गया है, फिर भी इसकी महत्ता घटने के बजाय और अधिक बढ़ गई है क्योंकि बढ़ती जनसंख्या और आवश्यकताओं ने इस पर दबाव बढ़ा दिया है।
यह एक विडंबनापूर्ण तथ्य है कि संपूर्ण मानवीय गतिविधियाँ इसी भूमि पर आधारित हैं, फिर भी इसकी सुरक्षा को लेकर लंबे समय तक उपेक्षा बरती गई। जैसे–जैसे समय बदला, मानव ने भूमि के महत्व को समझा और इसके संरक्षण व समुचित उपयोग के लिए भूमि नियोजन और प्रबंधन के क्षेत्र में प्रयास आरंभ किए। समस्याएँ तब शुरू हुईं जब मनुष्य ने स्वयं को भूमि का सर्वोच्च स्वामी मानते हुए इसका अंधाधुंध दोहन प्रारंभ कर दिया। प्रारंभ में भूमि का उपयोग मुख्यतः कृषि कार्यों तक सीमित था, लेकिन बाद में रेत, खनिज और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से मृदा की उर्वरता घटने लगी। हरे–भरे जंगलों को काटकर कृषि भूमि में परिवर्तित किया गया, जो सीमित रूप में तो प्रकृति के संतुलन में बाधा नहीं बना, लेकिन जब लालचवश भूमि का उपभोग निजी स्वार्थ के लिए होने लगाकृजैसे कि औद्योगिक विकास, आवासीय परियोजनाएं, मनोरंजन स्थल और बुनियादी ढाँचेकृतब भूमि की जैविक गुणवत्ता और पारिस्थितिकीय संतुलन पर गंभीर प्रभाव पड़ने लगे।

मुख्य शब्दः– उच्चावच्च, जलवायु, मृदा, वनस्पति।

भूमि उपयोग मूलतः कुछ निश्चित सिद्धांतों पर आधारित होता है, जो इसके व्यवस्थित और प्रभावी संचालन का मार्गदर्शन करते हैं। किसी भी क्षेत्र के आर्थिक विकास हेतु भूमि का सुनियोजित एवं क्रमबद्ध उपयोग अनिवार्य होता है। चूँकि पृथ्वी की सतह का प्रत्येक भाग मानव जीवन की आधारशिला है, इसलिए भूमि उपयोग से जुड़े मौलिक सिद्धांतों की समझ अत्यंत आवश्यक हो जाती है। यह समझ सुनिश्चित करती है कि भूमि का प्रयोग सतत, संतुलित और मानव हित में हो सके। कृषि योग्य भूमि पर भी अत्याधुनिक यंत्रों, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग ने उत्पादन को तो अस्थायी रूप से बढ़ाया, किंतु दीर्घकालिक रूप से भूमि की उत्पादकता को हानि पहुँचाई है। इस कारण आज मानव और

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

मृदा दोनों ही संकट की स्थिति में हैं। इन दुष्प्रभावों के परिणामस्वरूप वैश्विक स्तर पर वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों और नीति–निर्माताओं का ध्यान भूमि संसाधनों के संरक्षण, प्रबंधन और योजनाबद्ध उपयोग की ओर गया है।आज की आवश्यकता यह है कि भूमि संसाधनों का नियोजन और संरक्षण न केवल एक वैकल्पिक उपाय बल्कि एक अनिवार्य कर्तव्य बन चुका है, ताकि सतत विकास और भावी पीढ़ियों की जरूरतों को सुरक्षित किया जा सके।

यह सिद्धांत भूमि उपयोग से अधिकतम लाभ प्राप्त करने की अवधारणा पर आधारित है। यद्यपि भूमि एक सीमित संसाधन है, फिर भी मानव इसकी सहायता से अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। चूंकि मानवीय आवश्यकताएँ विविध प्रकार की होती हैं, इसलिए भूमि का प्रयोग किसी एक उद्देश्य तक सीमित नहीं रखा जा सकता। परिणामस्वरूप, भूमि का उपयोग आवासीय, वाणिज्यिक, औद्योगिक, कृषि, वन आदि अनेक प्रयोजनों के लिए किया जाता है, जिससे इसका संतुलित और समुचित उपयोग संभव हो पाता है।[2]

इस सिद्धांत का उद्देश्य भूमि के अधिकतम उपयोग के माध्यम से जनसंख्या को अधिकतम लाभ प्रदान करना है। मैदानी क्षेत्रों जैसे सघन जनसंख्या वाले भाग, पहाड़ी और पठारी क्षेत्रों की तुलना में भूमि उपयोग की दृष्टि से अधिक लाभकारी सिद्ध होते हैं, क्योंकि यहां परिवहन सुविधाएं सहजता से उपलब्ध होती हैं और कृषि मशीनीकरण भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है। यह सिद्धांत इस ओर संकेत करता है कि भूमि का प्रभावी उपयोग करके जनसंख्या को वैकल्पिक और व्यापक लाभ प्रदान करने की संभावनाएं उत्पन्न की जा सकती हैं।[3]

इस सिद्धांत के अनुसार किसी क्षेत्र विशेष में भूमि का उपयोग उन फसलों के उत्पादन के लिए किया जाना चाहिए, जो उस क्षेत्र की प्राकृतिक विशेषताओं और मृदा की गुणवत्ता के अनुकूल हों तथा अधिकतम शुद्ध लाभ प्रदान करें। भूमि की क्षमता, मृदा संरचना और उपजाऊपन जैसे कारकों को ध्यान में रखकर ही फसल चयन किया जाना चाहिए। जब भूमि की प्रकृति के अनुसार फसलों का चयन होता है, तो पैदावार अधिक और गुणवत्ता भी बेहतर होती है। उदाहरणस्वरूप, काली मृदा कपास, तिलहन और ज्वार के लिए उपयुक्त होती हैय लैटेराइट मृदा में धान की खेती लाभकारी हैय मरुभूमि क्षेत्रों में नारियल और काजू की खेती होती हैय जबकि जलोढ़ और ज्वालामुखी मृदा के मिश्रण से बनी कैलकेरिया मृदा गन्ने के लिए अनुकूल मानी जाती है। यदि भूमि उपयोग का प्रतिरूप मृदा की अनुकूलता के विरुद्ध परिवर्तित कर दिया जाए, तो उत्पादन में गिरावट आ सकती है। इसके विपरीत, यदि तुलनात्मक रूप से अधिक उपयुक्त और लाभकारी विकल्प अपनाए जाएं, तो न केवल पैदावार में बल्कि आय में भी वृद्धि संभव है।[4]

भूमि एक सीमित और बहुमूल्य संसाधन है, जिसकी आपूर्ति विभिन्न प्रयोजनों के लिए निश्चित होती है। किसी भी क्षेत्र की भूमि का मूल्यांकन मुख्य रूप से उसकी कृषि उपयोगिता के

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

आधार पर किया जाता है, जो उस क्षेत्र के भौगोलिक तत्वों पर निर्भर करता है। कृषि योग्य भूमि की उपयुक्तता को निर्धारित करने में मृदा, जलवायु, स्थलाकृति (उच्चावच) और वनस्पतियों जैसे पर्यावरणीय कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साथ ही, मानव जनित क्रियाएंकृजैसे कृषि, औद्योगीकरण, वानिकी, और मनोरंजन से संबंधित गतिविधियांकृभी भूमि संसाधन की प्रकृति और उपयोग को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।

भूमि उपयोग को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों में उच्चावच, जलवायु, मृदा और वनस्पति शामिल होते हैं। विभिन्न प्रकार की भूमि का उपयोग उसकी भौतिक विशेषताओं के अनुसार भिन्न–भिन्न रूपों में किया जाता है। उदाहरणस्वरूप, उपजाऊ भूमि का प्रयोग मुख्यतः कृषि के लिए किया जाता है, और यदि वह भूमि सिंचाई की सुविधा वाले क्षेत्र में स्थित हो, तो उसमें खाद्यान्नों का उत्पादन सफलतापूर्वक किया जा सकता है। वहीं, शुष्क एवं बलुई मृदा वाली भूमि में प्रायः ज्वार, बाजरा और अन्य मोटे अनाजों की खेती की जाती है, जो उस क्षेत्र की जलवायु और मृदा के अनुकूल होते हैं।

अध्ययन क्षेत्र की भूमि विविध आकारों और आकृतियों में प्राकृतिक रूप से विद्यमान है, जो भौतिक संरचनाओं की दृष्टि से भिन्न–भिन्न स्वरूप प्रस्तुत करती है। भूमि के उच्चावच की जानकारी से ही भूमि विकास हेतु उपयुक्त उपायों का निर्धारण किया जा सकता है। पहाड़, घाटियाँ, तीव्र ढलान जैसी उच्चावच विशेषताएँ भूमि के प्रभावी उपयोग में बाधा उत्पन्न करती हैं और मानवीय गतिविधियों को भी सीमित करती हैं। इस जिले की सीमा के चारों ओर विशिष्ट भौगोलिक संरचनाएँ पाई जाती हैं। पूर्व और दक्षिण दिशा में ग्वालियर शृंखला की चट्टानें पर्वतीय स्वरूप में विस्तारित हैं, जहाँ मालवा पठार लगभग एक हजार फुट ऊँचाई तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र में सिरकोली संरक्षित वन की टोर पहाड़ी तथा रेहट संरक्षित वन की डीन पहाड़ी स्थित हैं। इसके अतिरिक्त सांक नदी की ऊपरी धारा के साथ रेहट से तिलावली तक अवशिष्ट पहाड़ियों की एक श्रृंखला भी फैली हुई है।[5] पश्चिम दिशा में गुप्तेश्वर पहाड़ी तथा दक्षिण में गुड़ागुड़ी और आमखो पहाड़ियाँ स्थित हैं। इसके अतिरिक्त किला पहाड़ी और हनुमान पहाड़ी भी इस क्षेत्र का भू–आकृतिक हिस्सा हैं। ये सभी पहाड़ियाँ व्यापक भूमि क्षेत्र को प्रभावित करती हैं और भौगोलिक स्वरूप में विविधता लाती हैं।

तिघरा रोड के उत्तर में क्रमिक ढलान वाले छोटे–छोटे टीले पाए जाते हैं। इस क्षेत्र का प्राकृतिक जल बहाव मुख्यतः दक्षिण से उत्तर दिशा की ओर है, जबकि कुछ हिस्सों में यह बहाव उत्तर–पूर्व की ओर भी होता है। इन्हीं ढलानों के प्रभाव से तिघरा क्षेत्र का जल आसपास के नालों में एकत्र होता है। इन नालों की सहायता से निर्मित कृषि तालाबों ने इस क्षेत्र की भूमि को उपजाऊ और कृषि योग्य बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

वे क्षेत्र जहाँ की जलवायु अनुकूल होती है, वे सदैव मानव निवास के लिए आकर्षण का केंद्र रहे हैं। मौसमी कृषि पद्धतियाँ और फसल चक्र भी जलवायु की परिस्थितियों पर ही निर्भर करते हैं। अध्ययन क्षेत्र में प्रायः उच्च तापमान की स्थिति बनी रहती है। लश्कर क्षेत्र चारों ओर ऊँची और बंजर भूमि से घिरा हुआ है, जिससे यहाँ गर्म हवाओं का प्रभाव अधिक तीव्र होता है। इस क्षेत्र में स्थित प्रमुख पहाड़ियाँकृजैसे नलकेश्वर पहाड़ी, भितरवार के चिटौली गाँव की पहाड़ियाँ, देवगढ़, लक्ष्मणगढ़, डबरा की मानपुर पहाड़ियाँ, जौरासी की पहाड़ियाँ, तथा ग्वालियर की किला और सत्यनारायण पहाड़ियाँकृगर्म वायुमंडलीय प्रवाह से प्रभावित रहती हैं। वर्तमान समय में ग्वालियर की जलवायु में भी उल्लेखनीय परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। एक अध्ययन के अनुसार, यदि तापमान 1 से 4 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ता है, तो इससे खाद्यान्न उत्पादन में 24 से 30 प्रतिशत तक की गिरावट आ सकती है।[6] जिसके प्रभाव से उत्पादकता तो प्रभावित होगी ही उन फसलों की गुणवत्ता पर भी प्रभाव पड़ता है। तापमान बढ़ने से भूमि की कार्यक्षमता भी प्रभावित होती है मृदा की लवणता में वृद्धि तथा जैव विविधता में कमी हो जाती है।

मृदा की भौतिक संरचना यह निर्धारित करती है कि कौन–सी फसल किस प्रकार की मिट्टी में उपजाऊ होगी। यदि मिट्टी उपजाऊ होती है, तो वह भूमि कृषि कार्यों के लिए उपयुक्त मानी जाती हैय अन्यथा, उसका उपयोग वैकल्पिक गतिविधियों हेतु किया जाता है।[7]

जिले की भूमि मुख्य रूप से मुरम और रेतीली प्रकृति की है। इसकी ऊपरी परत के नीचे कठोर चट्टानों की परतें पाई जाती हैं। ग्वालियर शृंखला की तलछटी चट्टानें अत्यधिक अपक्षय के कारण अव्यवस्थित रूप में विद्यमान हैं। अधिकांश क्षेत्र पड़त भूमि और बंजर भू–भाग से घिरा हुआ है। स्वर्ण रेखा नदी के पश्चिमी भाग की भूमि रेतीली और पत्थरयुक्त है, जबकि पूर्वी भाग में रेतीली और दोमट मिट्टी पाई जाती है। पूर्व दिशा के समतल क्षेत्रों का उपयोग मुख्यतः कृषि कार्यों के लिए किया जा रहा है।

वनस्पति भूमि उपयोग का एक महत्वपूर्ण घटक है, क्योंकि यह मृदा की उर्वरता को प्रभावित करती है। जब वनस्पति के अंग मृदा में मिलते हैं, तो उनके जैविक और सूक्ष्मजीवीय घटकों की पारस्परिक क्रिया से ह्यूमस का निर्माण होता है, जो मिट्टी की उर्वर शक्ति को बढ़ाने में सहायक होता है। जिले की भू–प्रकृति के अनुसार यहां की वनस्पति मुख्यतः शुष्क और पर्णपाती प्रकार की है। केवल पूर्वी क्षेत्र के मैदानों को छोड़कर, शेष भागों में वनस्पति घनत्व अत्यंत कम पाया जाता है।

किसी क्षेत्र के भूमि उपयोग पर वहाँ की आर्थिक गतिविधियाँ महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। विशेष रूप से परिवहन व्यय इस संदर्भ में एक निर्णायक भूमिका निभाता है। भूमि उपयोग की दृष्टि से उत्पादक क्षेत्रों और बाजार के बीच की दूरी का मूल्यांकन आवश्यक होता है,

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

क्योंकि अधिक दूरी होने पर परिवहन लागत बढ़ जाती है, जबकि बाजार के निकटवर्ती क्षेत्रों में व्यापारिक गतिविधियाँ अधिक लाभकारी सिद्ध होती हैं। ग्वालियर जिला आरंभ से ही एक प्रमुख व्यापारिक केंद्र रहा है, जिसका मुख्य कारण इसका प्रमुख परिवहन मार्गों से सघन संपर्क है। यहाँ की आर्थिक संरचना मुख्यतः कृषि भूमि पर आधारित है, किंतु उत्पादों के निर्माण में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार की प्रौद्योगिकियाँ भी क्षेत्र की आर्थिक दशा को प्रभावित करती हैं।

भूमि उपयोग पर सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों का गहरा प्रभाव पड़ता है, जिनमें रीति–रिवाज, परंपराएं, धार्मिक आस्था, जन अभिवृत्तियां और सार्वजनिक कार्यक्रम शामिल हैं। कुछ सांस्कृतिक प्रथाएं, जैसे पेड़ों के अवशेषों को जलाना या स्थानांतरित कृषि प्रणाली, भूमि की उपलब्धता और उसकी गुणवत्ता को प्रभावित कर देती हैं। अध्ययन क्षेत्र में बढ़ती जनसंख्या ने किसानों के लिए उपलब्ध कृषि भूमि के आकार को सीमित कर दिया है, जिससे उपज और उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप शहरीकरण की गति भी तेज हुई है, जिसने आधुनिकता और आर्थिक विकास की दिशा में गति तो दी है, परंतु इसके साथ कई समस्याएं भी उत्पन्न की हैं, जिनका सीधा और परोक्ष प्रभाव भूमि उपयोग की दिशा में देखा जा सकता है। भूमि स्वामित्व भी भूमि उपयोग का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक है। जब किसान स्वयं भूमि का स्वामी नहीं होता, तो वह स्थायी फसलों की जगह अल्पकालिक फसलें जैसे मक्का या मटर उगाना पसंद करता है और भूमि सुधार के प्रति उदासीन रहता है। इसके विपरीत, यदि किसान भूमि का स्वामी होता है, तो वह दीर्घकालिक दृष्टिकोण अपनाकर बेहतर फसलें उगा सकता है, भूमि में सुधार कर सकता है और उसकी उत्पादकता बढ़ा सकता है। इसके अतिरिक्त, सरकारी नीतियाँ और कार्यक्रम जैसे भूमि उपयोग अधिनियम, सघन कृषि जिला योजना, हरित क्रांति, खाद्य सुरक्षा अधिनियम आदि भी भूमि उपयोग के स्वरूप को प्रभावित करते हैं और क्षेत्रीय कृषि व्यवस्था को पुनः परिभाषित करते हैं।

भारत सरकार के खाद्य एवं कृषि मंत्रालय द्वारा किए गए अंतर–फसल मूल्य क्षमता अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि फसलों के बाजार मूल्यों में होने वाले उतार–चढ़ाव का कृषि भूमि उपयोग पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इस मूल्य परिवर्तन का प्रभाव फसलों के क्षेत्र विस्तार पर मुख्यतः दो प्रकार से दृष्टिगोचर होता है– जिन फसलों का बाजार मूल्य अपेक्षाकृत अधिक होता है, उन फसलों की खेती के लिए समर्पित भूमि क्षेत्र में वृद्धि देखने को मिलती है। वहीं, जिन फसलों के मूल्य स्थिर रहते हैं, वे भी एक हद तक किसानों को आकर्षित करती हैं, जिससे उनके क्षेत्र में भी वृद्धि होती है। इसके विपरीत, जिन फसलों के मूल्य निरंतर परिवर्तित होते रहते हैं और अस्थिर बने रहते हैं, उनके अंतर्गत आने वाले क्षेत्र में गिरावट देखी जाती

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

है। यह अध्ययन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि मूल्य स्थिरता और लाभ की संभावना किसानों के भूमि उपयोग निर्णयों को गहराई से प्रभावित करती है।[8]

वर्तमान सदी की शुरुआत में, वर्ष 1898–99 और 1899–1900 के दौरान अत्यंत कम वर्षा के कारण जिले को गंभीर दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ा। इसके पश्चात 1905–06 में ग्वालियर क्षेत्र एक बार फिर अकाल की चपेट में आया, जिसका प्रतिकूल प्रभाव फसल संरचना और उत्पादन पर पड़ा। इसी प्रकार, वर्ष 1928–29 में वर्षा के देर से आरंभ होने के कारण कृषि फसलों को भारी क्षति पहुँची, जिससे कृषकों को कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा।[9] समयानुसार पर्याप्त वर्शा न होने के कारण कृशि भूमि में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

बीज, उर्वरक, भंडारण, विपणन सुविधाएं और परिवहन जैसे कृषि–संबंधी साधनों का भूमि उपयोग पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि किसी क्षेत्र में सिंचाई की सुविधाएं पर्याप्त रूप से उपलब्ध करवा दी जाएं, तो उस क्षेत्र की भूमि की उत्पादकता और उपयोगिता में उल्लेखनीय वृद्धि हो जाती है, जिससे उसका महत्व भी स्वतः बढ़ जाता है।[10]

निष्कर्षः–

भूमि मानव जीवन के लिए एक अमूल्य वरदान है, जिसके आधार पर वह आज विकास की दिशा में निरंतर अग्रसर हुआ है। कृषि तथा कृषि–आधारित उद्योगों की स्थापना भी इसी भूमि पर की जाती है, जो राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भूमि पर ही वनों का विस्तार, खनन, उद्योग, आवास, परिवहन और आधुनिक उपयोग जैसे विविध कार्य संपन्न होते हैं। हालांकि भूमि संसाधन सीमित हैं, परंतु मानव ने अपनी अनियंत्रित इच्छाओं की पूर्ति के लिए इसका अत्यधिक दोहन किया, जिसके परिणामस्वरूप अनेक विनाशकारी समस्याएं उत्पन्न हो गईं। कृषि के प्रारंभिक चरण में जब मानव और प्रकृति के बीच संतुलन बना हुआ था, तब भूमि से संबंधित कोई विशेष संकट नहीं था। किंतु समय के साथ भूमि की घटती गुणवत्ता और अंधाधुंध उपयोग ने यह चुनौती खड़ी कर दी है कि भूमि का समुचित उपयोग, प्रभावी प्रबंधन और नियोजन कैसे किया जाए। क्योंकि केवल स्वस्थ और उर्वर भूमि ही आर्थिक समृद्धि तथा मानव विकास की आधारशिला बन सकती है।

संदर्भ ग्रंथः–

1. Mandal R. B. (1990) : Land Utilization (Theory and Practice). New Delhi, Concept Publication Company, Pg. 43.
2. पालीवाल, डॉ. कमलेश (1999) :भूमि उपयोग एवं उत्पादकता, इलाहाबाद, किताब महल, पृष्ठ 70.
3. संदर्भ क्रमांक 2, पृष्ठ 70.

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

4. कृष्णन वसु (1968) : मध्यप्रदेश गजेटियर. जिला ग्वालियर, पृष्ठ 5.
5. संदर्भ क्रमांक 4, पृष्ठ 5.
6. मीनाक्षी (सितम्बर 2016)जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा, एक रिपोर्ट, International Journal Of Recent Research, Volume 3, Issue 3. Pg. 122-127.
7. कृष्णन वसु (1968) : मध्यप्रदेश गजेटियर. जिला ग्वालियर, पृश्ठ 120.
8. ग्वालियर विकास योजना (2021) : संचालनालय नगर तथा ग्राम निवेश, भोपाल (मध्यप्रदेश), पृष्ठ 25
9. Conroy, J. Micheal and Peterson (2013): Decision Making in Natural Resource Management. John Wiley And Sons Publication, Sons, Ltd. Pg 25.
10. संदर्भ क्रमांक 9, पृष्ठ 27.